समग्र मानव के निर्माण में शिक्षक-छात्र अनुपात की भूमिका
कृष्णमूर्ति तथा टैगोर के संदर्भित विचारों की प्रासंगिकता

प्रभात कुमार*
आशीष श्रीवास्तव**

भीड़ का मनोविज्ञान, भीड़ में शिक्षक का मनोविज्ञान और शिक्षक पर समग्र मानव के निर्माण का दायित्व। संपूर्ण आलेख सिर्फ एक बात को लक्षित है कि समग्र मानव के निर्माण, जिसे संपूर्ण मानवजाति के संदर्भ में शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य माना गया है, की परिकल्पना जिन मनीषियों, दार्शनिकों और शिक्षाविदों द्वारा की गई थी उस लक्ष्य को पाने में सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से एक शिक्षक-छात्र अनुपात की भूमिका की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गहराई से जाँच-पड़ताल करना है। भीड़ के मकड़जाल में कैसे एक शिक्षक सिर्फ़ एक प्रबंधक बनकर रह जाता है और एक बच्चा समग्र मानव की जगह 'रोबोट', इन दोनों ही बातों को समझने और समझाने का प्रयास, यह आलेख करता है। कृष्णमूर्ति और टैगोर, दोनों की सूक्ष्म दृष्टि ने आज से सालों पहले, खासकर जिस समय वर्ग में बच्चों की संख्या को लेकर शिक्षक को कोई परेशानी नहीं थी, सही शिक्षक-छात्र अनुपात की महत्ता तथा उसके कारण पड़तालने वाले महत्वपूर्ण प्रभावों पर रोशनी डाली थी और जिसकी महत्ता को आज पूरा शैक्षणिक समूह स्वीकार करता है। कृष्णमूर्ति का चिंतन शिक्षक-छात्र के बीच संवाद की प्रक्रिया को बहुत महत्वपूर्ण मानता है। बच्चों की मन:स्थिति को समझने के लिए शिक्षक और छात्र के बीच वार्ता या डायलॉग का होना ज़रूरी है परंतु वर्ग छात्र संख्या एकालाप को बढ़ावा देता है। फिर यह एकालाप औसतपन को बढ़ावा देता है। यह आलेख इस बात को बताता है कि भीड़ की कक्षा जहाँ बच्चों को

* *शोध छात्र,* शिक्षा विभाग, विश्व भारती, शांतिनिकेतन , बीरभूम, पश्चिम बंगाल
** *उप-प्राचार्य,* शिक्षा विभाग, विश्व भारती, शांतिनिकेतन , बीरभूम, पश्चिम बंगाल

Chapter 10.indd 88 03-08-2017 16:15:39

'हम क्या सोचें' बताती है वहीं भीड़ को कम कर निर्मित की गई आनंद की पाठशाला में बच्चे 'हम कैसे सोचें' की प्रक्रिया से गुज़रते हैं। यह आलेख समग्र मानव के निर्माण में शिक्षक की महत्त्वपूर्ण भागीदारी को भी रेखांकित करता है।

A direct and vital relationship between teacher and student is almost impossible when the teacher is weighed down by large and unmanageable numbers[1].

– ज़िद्दु कृष्णमूर्ति

परिचय

इस आलेख की वैचारिक पृष्ठभूमि का आगाज़ तो शायद तभी हो चुका था जब मैंने खुद को अपनी लंबी शैक्षिक गतिविधियों के दौरान शिक्षक से मिलने वाले पूर्ण सहयोग और ध्यान से वंचित पाया। बड़े आकार वाले कक्ष और उसके अंदर भेड़-बकरियों की तरह ठूँसे गए असहज अवस्था में बैठे विद्यार्थी तथा सामने मंच पर आसीन एक मास्टर साहब भला उस ध्यान की ज़रूरत को कैसे पूरा कर पाएँगे जिसकी ज़रूरत ईशान अवस्थी[2] जैसे बच्चों के साथ-साथ प्रत्येक बच्चे को अलग-अलग संदर्भों में होती है। जिस गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की बात हमारी शिक्षा व्यवस्था करती है और जिसके मूल में मानव की रचना की बात अंतर्निहित है उस लक्ष्य को वर्ग में बढ़ रही दो संख्याओं के तदोपरांत छीजते आत्मीय संवाद की स्थिति में कैसे हासिल किया जाएगा, यह प्रासंगिक और विचारणीय यक्ष प्रश्न है। भारतीय शिक्षा व्यवस्था के चलताऊ संस्करण की परिणति किस रूप में सामने आएगी यह तो समय तय करेगा परंतु अचानक से किसी क्षण में इस चलताऊ शिक्षा व्यवस्था से ऊबा हुआ मन जब दिल्ली के यमुना पार स्थित करावल नगर के उस 'गड्ढे वाले स्कूल'[3] की कहानी अखबार में पढ़ता है, जिसमें 7000 बच्चे शिक्षा पा रहे हैं, तो फिर वर्षों से दबी सोच सफ़ों पर स्वरूप पाने के लिए लिखने को प्रेरित करती है। उसी प्रेरणा का नतीजा यह आलेख है।

उद्देश्य

1. शिक्षा के मुख्य लक्ष्यों को पाने में शिक्षक–छात्र अनुपात की भूमिका की जाँच करना।
2. कृष्णमूर्ति तथा टैगोर द्वारा शिक्षक–छात्र अनुपात के संदर्भ में व्यक्त विचारों का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करना।

ज्ञात तथ्य

बात शिक्षा के किसी भी स्तर, चाहे वह स्कूली शिक्षा हो या विश्वविद्यालयी, शिक्षक-छात्र अनुपात के कारण पड़ने वाले महत्वपूर्ण प्रभावों और उससे उपजे परिणामों की अनदेखी न सिर्फ शिक्षा के लक्ष्यों को पाने से हमें दूर कर सकता है बल्कि शिक्षा के मूल में अंतर्निहित 'गुणवत्ता' जैसे महत्वपूर्ण कारकों को संपूर्ण शैक्षणिक परिदृश्य से विलुप्त हो जाने

में मदद भी कर सकता है। यह सर्वविदित तथ्य है कि 'गुणात्मक सुधार' और 'मात्रात्मक सुधार' की प्रक्रिया को एक साथ न तो कार्यान्वित किया जा सकता है और न ही भारत जैसे विशाल लोकतांत्रिक देश में, जहाँ लगभग 10 लाख स्कूलों में पढ़ रहे 2025 लाख बच्चों को पढ़ाने की ज़िम्मेदारी 55 लाख शिक्षकों पर है[4], दोनों प्रकार के सुधारों को लागू करने हेतु आधारभूत शैक्षणिक ढाँचा ही उपलब्ध है। अगर हम सिर्फ 'संख्या या मात्रा' के संदर्भ में भी शिक्षक-छात्र अनुपात का अवलोकन करें, तो पाते हैं कि जहाँ एक तरफ़ हमारा शिक्षा जगत संख्यात्मक स्तर पर शिक्षकों की भारी कमी से जूझ रहा है, वहीं बच्चों की वर्ग-उपस्थिति को उच्चतम स्तर तक ले जाने हेतु लक्षित हमारी शिक्षा नीति वर्गों में बच्चों की अनियंत्रित संख्या से रू-ब-रू हो रही है। अतः प्रथम सवाल उठता है कि घटती शिक्षक संख्या और बच्चों की बढ़ती संख्या के मध्य बढ़ती खाई को गुणवत्ता के संदर्भ में बिना समझौता किए कैसे न्यूनतम स्तर तक लाया जा सकता है।

हाल ही में संसद में पेश एक रिपोर्ट बताती है कि केंद्रीय विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की कुल मंज़ूर संख्या 16600 है जिनमें से 5928 पद खाली पड़े हैं। केंद्रीय विद्यालयों में 9000 से अधिक शिक्षकों के पद खाली पड़े हैं। *इंडियन एक्सप्रेस* में छपी एक रिपोर्ट बताती है कि सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत पूरे देश में अनुमोदित 19,82,894 पदों में से 6,96,560 पद खाली हैं।[5] यद्यपि मानव संसाधन विकास मंत्री छात्र-शिक्षक अनुपात के (कुछ राज्यों जैसे — बिहार, उत्तर प्रदेश आदि को छोड़कर) बेहतर होने तथा इसके राष्ट्रीय स्तर पर 1:25 तक पहुँच जाने की बात करती हैं[6] परंतु सच्चाई कुछ और ही है। कहीं-कहीं तो स्थितियाँ इतनी भयावह हैं कि पाँच सौ बच्चों पर एक शिक्षक ही नियुक्त है। वर्ल्ड बैंक द्वारा प्रदत्त सारणी 1 के आँकड़ों का विश्लेषण हमें बताते हैं कि फ़िनलैंड जैसे देशों की शैक्षिक गुणवत्ता के पीछे का विज्ञान शिक्षक-छात्र अनुपात का सही होना है। अभी तक तो हम संख्यात्मक दृष्टिकोण से वस्तुस्थिति को परख रहे थे और इस परख में भी हम चिंतनीय स्थिति को छू रहे हैं।

सारणी 1

शिक्षक-छात्र अनुपात

देश	2011	2012	2013	2014
भूटान	25	24	29	27
ब्राज़ील	21	21	21	—
चाइना	17	17	17	—
फ़िनलैंड	14	14	13	—
फ्रांस	18	18	18	—
जर्मनी	12	12	12	—

भारत	35	—	32	—
इंडोनेशिया	19	19	16	—
जापान	17	17	17	—
नीदरलैंड्स	12	12	12	—
नॉर्वे	—	—	9	—
पाकिस्तान	40	41	43	47
पोलैंड	10	10	10	—
स्विट्ज़रलैंड	—	11	—	—
यूनाइटेड किंगडम	17	18	18	—
यूनाइटेड स्टेट्स	14	14	14	—
श्रीलंका	24	24	24	24

शिक्षक-छात्र अनुपात तथा इसके कारण पड़ने वाले प्रभाव की दिशा में हुए शोध बताते हैं कि[8] –

- छोटी कक्षा (अर्थात् कम बच्चों की संख्या वाला कक्षा) निचली श्रेणी वाली कक्षा के बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि में उत्प्रेरक का काम करते हुए रचनात्मक प्रभाव डालती है।
- सबसे बेहतरीन उपलब्धि के लिए वर्ग में बच्चों की संख्या 18 से अधिक नहीं होनी चाहिए।
- सही शिक्षक की अनुपलब्धता की स्थिति में कम बच्चों वाले वर्ग का शैक्षिक सफ़लता में कम योगदान का होना।

विश्लेषण

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005 कक्षा के आकार तथा शिक्षक-छात्र अनुपात को लेकर चर्चा करना भूलता नहीं है।..... *कक्षा आकार एक महत्वपूर्ण कारक है जो शिक्षक के पाठ्यचर्या संपादन की प्रक्रिया में विधियों और अभ्यासों के चुनाव को प्रभावित करता है। राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय अनुभवों ने दर्शाया है कि 1:30 से अधिक का अनुपात विद्यालयी शिक्षा की किसी भी अवस्था के लिए वांछित नहीं है। 1966 की कोठारी कमीशन की रिपोर्ट में चेतावनी दी गई थी कि बड़ी कक्षाएँ 'शिक्षण स्तर में गिरावट के लिए उत्तरदायी हैं' और भीड़-भाड़ वाली कक्षाओं में सृजनशील अध्यापन की बात करना निरर्थक है..*[9] इसे भारतीय शिक्षा व्यवस्था की विडंबना कहना ही उचित जान पड़ता है कि 39 साल पहले कोठारी कमीशन की कही बात को वर्ष 2005 में भी दोहराना पड़ा। अतः संख्यात्मक असंतुलन से निपटने के लिए सरकार को समय रहते शिक्षकों की नियुक्ति प्रक्रिया में पारदर्शिता तथा तेज़ी लानी होगी।

असंतुलित शिक्षक-छात्र संख्या — आखिर हम क्या खो रहे हैं ?

इस बात पर आगे बढ़ने से पहले कि हम क्या खो रहे हैं, हमें पहले यह जानना होगा कि हम खोज क्या रहे

हैं ? शिक्षा के वे कौन से ऐसे लक्ष्य हैं जिनकी प्राप्ति पर असंतुलित शिक्षक-छात्र संख्या ने ग्रहण लगने की स्थिति पैदा कर दी है? ज़िद्दु कृष्णमूर्ति कहते हैं कि ..the function of education is to create human beings …[10].अब सवाल उठता है कि इस 'समग्र मानव' के निर्माण में जिन आधारभूत तत्वों की ज़रूरत होगी, वे हैं अच्छाई, प्रेम, सहजता, संवेदनशीलता इत्यादि परंतु इन सभी मूल्यों तथा बातों का समग्र मानव के व्यक्तित्व के साथ समावेशीकरण कैसे हो? मनुष्यत्व का सृजन कैसे हो। यह समावेशीकरण सिर्फ घनीभूत शिक्षक-छात्र संबंध द्वारा ही संभव है। घनीभूत संबंध का आधार तो संवाद की वह प्रक्रिया होती है जो परस्पर मिलने-जुलने पर ही संभव हो पाती है। संबंध दो व्यक्तियों के बीच पारस्परिकता का बोध है। संबंध का अर्थ है भयमुक्त सह्संवाद।[11] शिक्षक-छात्र के संदर्भ में जब हम संबंधों की बात करते हैं तो उस पारस्परिकता, भयमुक्त सह्संवाद को अनुपस्थित पाते हैं जो समग्र मानव के निर्माण के लिए आवश्यक है और इस अनुपस्थिति के मुख्य कारणों में अनियंत्रित कक्षीय छात्र संख्या का होना भी एक कारण है।

एक शिक्षक के साथ अगर बच्चे के एक छोटे समूह को जोड़ें तो हम एक साथ कई समस्याओं से निजात पा जाते हैं। वर्ग में उठने वाले शोर, सुनने की समस्या या फिर प्रत्येक बच्चे तक न पहुँच पाने की बात हो –छोटे समूह के नियोजन द्वारा हम कई परेशानियों से बच सकते हैं। ज़िद्दु कृष्णमूर्ति छोटे वर्ग कि प्रासंगिकता को बताते हुए कहते हैं *...it is obviously important to have a very limited number of students in a class, so that the educator can give his full attention to each one. When the group is too large he can't do this, and then punishment and reward become a convenient way of enforcing discipline.*[12] इस प्रकार छोटी कक्षाएँ जहाँ सहज संचालित होती हैं वहीं शिक्षक को व्यक्तिगत आत्मीय संवाद स्थापित करने हेतु समय और माहौल दोनों उपलब्ध करवाती हैं। अधिक बच्चों की उपस्थिति में शिक्षक और छात्र दोनों ही न जाने कितने ही सुंदर एहसासों तथा अपनी अंदरूनी प्रतिभा को स्वरूप देने से वंचित रह जाते हैं। शिक्षक वर्ग से संबंधित याँत्रिक कार्यों को संपादित करने में ही कुछ इस तरह उलझ जाता है कि न तो उसे अपने व्यक्तित्व में मौजूद बच्चे से मिलने की फ़ुरसत होती है और न ही उस बच्चे से जो सामने बैठा 'ईशान अवस्थी' की तरह हज़ार खयाल रंगों में और मन में बुन रहा होता है। और यहीं से शिक्षक तथा बच्चे दोनों अपनी नैसर्गिक ऊर्जा तथा प्रतिभा को जाने बिना उससे दूर होने लगते हैं। इस प्रकार आगे चलकर हमारा व्यक्तित्व सिर्फ याँत्रिक बनकर रह जाता है। इस तरह सृजन की प्रक्रिया जहाँ अवरुद्ध होती है वहीं पुनरावृत्ति से उपजी नीरसता हमारे विकास की प्रक्रिया में बाधक बन जाती है। रबींद्रनाथ टैगोर कहते हैं *.....the born teacher is the man in whom the primal child responds readily to the call of children. The gay laughter of youthful jollity gushes forth from his deep throat. If the children did*

not know him as one of those pre-historic mammoths, they would never be able to hold out the hand of friendship to him.[13] छात्रों की छोटी संख्या न केवल छात्रों के दृष्टिकोण से अच्छी है बल्कि शिक्षक के लिए भी। कम बच्चों की उपस्थिति में शिक्षक–छात्र के मध्य पढ़ाने जैसी कोई क्रिया होती ही नहीं है बल्कि शिक्षक के अंदर का बच्चा वर्ग के बच्चे के साथ तादात्मय स्थापित करते हुए एक ऐसे संवाद में संलग्न हो जाता है जहाँ से दोनों सिर्फ़ सीखते हैं और दोनों ही ज्ञान का निर्माण करते हैं। टैगोर कहते हैं – *as well as being able to guide the individual talents of the child, and being with his touch with his/her own "primal child", the ideal teacher realises that "to teach is to learn".*[14] कम बच्चों वाले समूह के साथ जुड़ने के बाद बनने वाले संबंधों के परिणामस्वरूप होने वाले गुणात्मक सुधार तथा परस्पर अंतःक्रिया से उपजी समझ पर यशपाल जैसे वैज्ञानिक *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005* में कहते हैं कि ...*अपने अनुभव के आधार पर मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि जो भी थोड़ी बहुत मेरी समझ है उसका अच्छा खासा हिस्सा बच्चों के साथ मेरे संवाद का नतीजा है* [15]

एक शिक्षक के लिए पढ़ाने का आनंद और एक बच्चे के लिए पढ़ने का आनंद, दोनों पहलुओं का सफ़लतापूर्वक निर्वहन अधिक संख्या वाले वर्ग में याँत्रिक कार्यों में उलझे मन वाले शिक्षक द्वारा संभव नहीं है। आनंद की पाठशाला के अभाव में फिर ज्ञान के निर्माण की कल्पना भी बेमानी हो जाती है। बच्चों के वर्तमान को अनदेखा कर भविष्य को महत्ता देने वाली हमारी शिक्षा व्यवस्था की वैचारकी में रचनात्मक चिंतन और बच्चों की अंतर्दृष्टि के लिए न जगह पहले थी और न आज है। कुछ उदाहरण को अगर छोड़ दें तो रोबोट की पीढ़ी तैयार करने वाली हमारी शिक्षा व्यवस्था ने दोहरे मानदंड को अपनाया, जिसके अंतर्गत एक तरफ़ तो शिक्षा को बाज़ार के दबाव में आकर खरीदने-बेचने वाली वस्तु बना डाला और दूसरी तरफ़ अपनी परंपरा, सरोकारों के दबाव में नैतिकता और मूल्यों को सर्वोपरि स्थान देने की बात की, उसके अंतर्गत एक तरफ़ तो हमने राम शंकर निकुम[16] जैसे संवेदनशील शिक्षक को खोया वहीं दूसरी तरफ़ प्रतियोगिता परीक्षा में सफ़लता की गारंटी देने वाले तथा सर्वाधिक अंक लाने को ही सफ़लता की कुँजी मानने वाले शिक्षकों की एक ऐसी पीढ़ी तैयार की जिनका 'आनंद' शब्द से कभी वास्ता रहा ही नहीं। इस शिक्षक वर्ग के लिए वर्ग छोटा हो या बड़ा, इन्हें कोई फ़र्क नहीं पड़ता क्योंकि ये वर्ग में ज्ञान के निर्माण की जगह ज्ञान को बाँटने के लिए जाते हैं। इन्हें शायद यह भी पता नहीं होता कि जानकारी (information) बाँटी जाती है, ज्ञान (knowledge) का तो निर्माण करना होता है वह भी खुद ही चाहे वह बच्चा हो या फ़िर शिक्षक।

कृष्णमूर्ति भी छोटे-छोटे समूह की वकालत करते हैं। एक बच्चे को समग्रता की ओर ले जाने वाली शिक्षा कभी भी भीड़ में नहीं दी जा सकती। पूर्ण विकास के लिए जिस व्यक्तिगत ध्यान (individual attention), धैर्य, बुद्धि और सतर्कता की ज़रूरत शिक्षक में एक बच्चे की तरफ़

होनी चाहिए वह तो कम बच्चे वाले समूह में ही संभव है। कृष्णमूर्ति कहते हैं – *The right kind of education is not possible en masse. To study each child requires patience, alertness and intelligence. To observe the child's tendencies, his aptitudes, his temperament, to understand his difficulties, to take into account his heredity and parental influence and not merely regard him as belonging to a certain category – all this calls for a swift and pliable mind, untrammelled by any system or prejudice. It calls for skill, intense interest and above all, a sense of affection...*[17]

ठीक यही है वह समय
जब आकार ले रही हैं उसकी अस्थियाँ
बन रहा है रक्त उसकी धमनियों में,
और विकसित हो रही हैं उसकी संवेदनाएँ
उसे हम जबाब नहीं दे सकते 'कल'
उसका नाम है 'आज'[18]

गेब्रिएला मिस्त्राल की ये पंक्तियाँ हम सभी को सचेत करते हुए बताती हैं कि बच्चों का कल्पना संसार, उनकी मनःस्थितियाँ, उनकी ज़रूरतें इन सभी को शिक्षक द्वारा समय रहते समझना होगा। ऐसा ना हो कि वर्ग और बच्चे के मध्य उपजे असंतुलन में बचपन कहीं खो जाए। ऐसा ना हो कि जिस शिक्षक पर बच्चों को स्वप्न के दिखाए जाने का उत्तरदायित्व हो वह शिक्षक भीड़ के दुष्चक्र में फँस जाए।

कृष्णमूर्ति कहते हैं कि अगर कम संख्या वाले बच्चों के समूह से एक शिक्षक को जोड़ भी दिया जाए और उस शिक्षक के व्यक्तित्व से प्रेम जैसे तत्व नदारत हों तथा उसे स्वतंत्रचेता मानव के निर्माण के तरीकों की जानकारी ही न हो तो फिर बात नहीं बनेगी। *If there is love and freedom in the hearts of the teachers themselves, they will approach each student mindful of his needs and difficulties; and then they will not be mere automations, operating according to methods and formulas, but spontaneous human beings, ever alert and watchful.*[19] अतः संख्यात्मक सुधार द्वारा ही केवल गुणात्मक सुधार की उम्मीद नहीं की जा सकती।

शिक्षा की दयनीय स्थिति, स्कूलों में बढ़ती भीड़ और शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों में छिपे व्यवसायीकरण का भाव–इन सब चीज़ों ने निजी ट्यूशन की अवधारणा को जन्म दिया। एन.एस.एस.ओ. की रिपोर्ट के अनुसार इस वक्त देश में निजी ट्यूशन ले रहे विद्यार्थियों की संख्या लगभग 7.1 करोड़ है।[20] पहली बात तो यह है कि इन निजी ट्यूशन को लेने वाले बच्चे उन कोचिंग संस्थानों से जुड़ते हैं जिनका सिर्फ व्यवसायिक उद्देश्य ही होता है। इन कोचिंग संस्थानों में शिक्षक-छात्र अनुपात 1:50 या फिर 1:100 और कभी-कभी तो यह अनुपात 1:300 तक होते हैं। कुछ ही सौभाग्यशाली बच्चे होते हैं जो 1:1 या 1:2 अनुपात के साथ ट्यूशन लेते हैं। इस तरह शिक्षा को हाशिये पर धकेलने वाले सरकारी नियमों तथा निजी ट्यूशन की पूर्ण व्यवसायिक सोच के

मध्य मानव के निर्माण से संबंधित शैक्षिक उद्देश्य का क्या होगा ? 'गड्ढे वाले स्कूल' के बच्चे जहाँ एक ओर पैसे के अभाव में निजी ट्यूशन ले नहीं सकते वहीं दूसरी ओर एक-एक अनुभाग (section) में 70 से 150 की संख्या के बीच बैठे बच्चों के मध्य अपनी सृजनशीलता की उड़ान को कैसे धरातलीय आधार देंगे। यह एक विचारणीय प्रश्न है।

ऊपर के आँकड़े बताते हैं कि प्राथमिक विद्यालयों में छह लाख से अधिक शिक्षकों की कमी है। इसका अर्थ है कि बच्चों के जीवन के सबसे महत्वपूर्ण वर्षों, खासकर जब वे सबसे अधिक सृजनशील होते हैं, में उन्हें शिक्षकों का वैसा सहयोग नहीं मिलता जैसा मिलना चाहिए। डॉ. रामबक्ष कहते हैं – बच्चे जानकारी से आनंदित नहीं होते, सृजन से आनंदित होते हैं। वे चीज़ों को वहाँ से हटाना चाहते हैं, जहाँ पर वे सदियों से स्थापित हैं। वे चंद्रमा से खेलना चाहते हैं। सूर्य को जेब में रखना चाहते हैं। यह कल्पना असंभव भले ही लगे परंतु उन्हें आनंद देती है।[21] अब सवाल यह है कि अधिक संख्या वाले वर्ग के शिक्षक को इतना वक्त कहाँ मिलता है कि वर्ग-कोलाहल से निपटने तथा अन्य औपचारिकताओं को निभाने के बाद बच्चों की फ़ैंटेसी की दुनिया, जिसका उपयोग बच्चे वास्तविक दुनिया से निकलने के लिए नहीं बल्कि उसमें प्रवेश के लिए करते हैं, में प्रवेश कर सकें या फिर बच्चों को जिस दुनिया की तलाश है उसको रच सकें। इससे बड़ी विडंबना हमारी शिक्षा व्यवस्था की क्या होगी कि सृजित करने की मूल प्रवृत्ति से लैस बच्चों को नीरस पाठ या तथ्यों को पढ़ने या याद करने की औपचारिकता निभानी पड़ती है जबकि हमारी शिक्षा का मूल उद्देश्य ही ज्ञान का निर्माण है।

हम जब अपने आस-पास के लोगों के कार्यकलाप पर नज़र डालते हैं तो पाते हैं कि अधिकांश व्यक्ति अनुकरण में व्यस्त हैं, उनका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है ही नहीं। हो भी कैसे! पाओलो फ्रेरे की 'शिक्षा की बैंकिंग अवधारणा' तथा बड़ी संख्या वाले वर्गों, दोनों के समन्वित प्रभाव का अध्ययन बताता है कि बच्चों के दिमाग में ठूँसी गई सूचनाएँ जहाँ आलोचनात्मक चिंतन को प्रभावित करती हैं, वहीं बच्चे को सब कुछ चुपचाप स्वीकार कर लेने को मजबूर करती हैं। फलस्वरूप ऐसी शिक्षा पाए बच्चे कभी भी स्वतंत्र व्यक्तित्व बना ही नहीं पाते। और यही हम खो रहे हैं। भीड़ की कक्षा में एक शिक्षक बच्चों को यह तो सिखा सकता है कि हम क्या सोचें पर यह नहीं कि हम कैसे सोचें। हम क्या सोचें अर्थात् दूसरे के द्वारा तय विचारों के खाँचे में खुद को ढालना अर्थात् अनुकरण के मार्ग पर चल पड़ना अर्थात् अपने स्वतंत्र अस्तित्व को तिलांजलि देकर रोबोट की तरह व्यवहार करना। भीड़ के मनोविज्ञान से उपजी याँत्रिकता स्वतंत्रचेता या आत्मचेता मानव, जो किसी समाज, राष्ट्र के विकास या मानव जीवन की उलझन को सुलझाने में सक्रिय और सफ़ल योगदान दे सकता है, के निर्माण को रोकती है। संपूर्ण मानव जाति के उत्थान के संदर्भ में इससे बड़ा नुकसान और क्या हो सकता है।

कक्षा में पढ़ाये जाने वाले पाठ या उससे जुड़े मूलभूत सिद्धांत की बारीकियों को जानने की बात हो

तब भी छोटी क्लास ही सही होती हैं। किसी चीज़ से जुड़ी जिज्ञासा का समाधान तो छोटे वर्गों में ही संभव है क्योंकि तभी प्रत्येक बच्चे तक शिक्षक की पहुँच हो पाती है। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि *..There must be very few children for each teacher. The teacher should understand the child, to see what kind of child he is ? To study the child implies a swift mind, a quick response, and that can take place only when there is affection. But in class of sixty children, how can you have such affection?* [22]

निष्कर्ष

ज्ञात तथ्यों तथा कृष्णमूर्ति और टैगोर के विचारों के अध्ययन के बाद हम पाते हैं कि समग्र मानव के निर्माण में शिक्षक-छात्र अनुपात से इतर अन्य कारक भी हैं जिनकी महत्वपूर्ण भूमिका है परंतु ये सभी कारक एक-दूसरे से गहरे जुड़े हुए हैं। शिक्षक में स्नेह-भाव का होना तथा वर्ग में छात्रों की कम संख्या, ये दो ऐसे महत्वपूर्ण कारक हैं जो संपूर्ण मानव के निर्माण में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपनी भूमिका अदा करते हैं। छात्र की कम संख्या जहाँ शिक्षक को बच्चे तक पहुँचने में सहायता कर रही है वहीं शिक्षक का स्नेह भाव शिक्षक को बच्चे के मानसिक स्तर पर लाने में मदद कर रहा है। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि जब शिक्षक और छात्र एक ही समय में एक ही स्तर पर मिलते हैं, तभी संवाद हो पाता है और तभी समझना भी हो पाता है। इस तत्काल बोध के फलस्वरूप बनता है एक ऐसा संबंध जिसमें शिक्षक और छात्र दोनों स्वयं उद्घाटित होने की प्रक्रिया से गुज़रते हैं। यही स्व बोध की भी प्रक्रिया है। समग्र मानव के निर्माण की प्रक्रिया भी यही है।

टिप्पणी

[1]कृष्णमूर्ति, जिद्दु. 1953. *एजुकेशन एंड सिग्निफ़िकेंस ऑफ़ लाइफ़.* कृष्णमूर्ति फ़ाउंडेशन इंडिया. पृ. 93. चेन्नई.

[2]चलचित्र. 2007. *'तारे ज़मीन पर'* में एक बच्चे का नाम.

[3]EPAPER. 19 मई 2016. Jansatta.com/c/10394558.

[4]*राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005.* पृ. 1. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

[5]बासु, मिहिका. मार्च 14, 2014. 12:31 pm.

[6]http://indianexpress.com/article/india/india-others/ssa-63-44-teachers-posts-vacant-in-state/

[7]IANS | Aug 4, 2014, 09.54 PM IST
http://timesofindia.indiatimes.com/home/education/news/Over-600000-primary-teachers-posts-lying-vacant/articleshow/39636017.cms

[8]http://data.worldbank.org/indicator/SE.PRM.ENRL.TC.ZS

[8]http://www.centerforpubliceducation.org/Main-Menu/Organizing-a-school/Class-size-and-student-achievement-At-a-glance/Class-size-and-student-achievement-Research
review.html

[9]राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005. पृ. 91. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

[10]कृष्णमूर्ति, जिद्दु. 1953. *एजुकेशन एंड सिग्निफ़िकेंस ऑफ़ लाइफ़*. कृष्णमूर्ति फ़ाउंडेशन इंडिया. पृ. 14. चेन्नई.

[11]____. 2006. *प्रथम और अंतिम मुक्ति*. कृष्णमूर्ति फ़ाउंडेशन इंडिया. पृ. 344. वाराणसी.

[12]____. 1953. *एजुकेशन एंड सिग्निफ़िकेंस ऑफ़ लाइफ़*. कृष्णमूर्ति फ़ाउंडेशन इंडिया. पृ. 94. चेन्नई.

[13, 14]ओ' कोनेल और एम. कैथलीन. 2012. *रबीन्द्रनाथ टैगोर — द पोएट एज़ एजुकेटर*. पृ. 20. विश्व भारती पब्लिशिंग डिपार्टमेंट. कोलकाता.

[15]राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005. पृ. iv. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

[16]चलचित्र. तारे ज़मीन पर 2007 में एक शिक्षक का नाम.

[17]कृष्णमूर्ति, जिद्दु. 1953. *एजुकेशन एंड सिग्निफ़िकेंस ऑफ़ लाइफ़*. कृष्णमूर्ति फ़ाउंडेशन इंडिया. पृ. 94. चेन्नई.

[18]पंड्या, हिमांशु, रोहित धनकर और विश्वंभर. 2013. *बच्चे और किताबें*. ग्रंथ शिल्पी. पृ. 28. नयी दिल्ली.

[19]कृष्णमूर्ति, ज़िद्दु. 1953. *एजुकेशन एंड सिग्निफ़िकेंस ऑफ़ लाइफ़*. कृष्णमूर्ति फ़ाउंडेशन इंडिया. पृ. 96. चेन्नई.

[20]EPAPER. Jansatta.com/c/9651412,13 April 2016

[21]पंड्या, हिमांशु, रोहित धनकर और विश्वंभर. 2013. बच्चे और किताबें. *ग्रंथ शिल्पी*. पृ. 155. नयी दिल्ली.

[22]कृष्णमूर्ति, ज़िद्दु. 2013. *एजुकेटिंग द एजुकेटर*. कृष्णमूर्ति फ़ाउंडेशन इंडिया. पृ. 44. 46. चेन्नई.